IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'त्रिभावतत्त्व' एक दार्शनिक विश्लेषण

डॉ0 जया मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
आर्य महिला पी.जी. कॉलेज,
वाराणसी

दर्शन् दर्शनरूप हैं। बहिर्जगत् का कुछ भी जिस प्रकार दशनेन्द्रिय नेत्र के बिना नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार दर्शनशास्त्र के बिना अन्तर्जगत् का रहस्य कुछ भी नहीं देखा जा सकता। मनुष्यसमाज में जिस प्रकार पदार्थ विद्या और शिल्पोन्नति में उसके बहिर्जगत् की उन्नति जानी जाती है उसी प्रकार दर्शनशास्त्र की उन्नति से उसके अन्तर्जगत् की उन्नति समझी जाती है। जिस मनुष्य–समाज ने जब जितना शिल्पोन्नति साधन किया है वह मनुष्यसमाज उस समय उतने ही परिमाण से बहिर्जगत् सम्बन्धीय उन्नति के पथ में अग्रसर हुआ है। शिल्प की उन्नति के साथ ही साथ मनुष्य समाज में पदार्थविज्ञान की उन्नति हुआ करती है। पदार्थ–विज्ञान कभी भी सर्वोच्च स्थान अधिकार नहीं कर सकता है तथापि उसकी उन्नति के परिणाम के अनुसार ही मनुष्यसमाज में बहिर्जगत् की उन्नति का परिमाण अनुमित हुआ करता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतिन्द्रिय पदार्थों का एकमात्र अवलम्बन दर्शनशास्त्र ही है। स्थूलराज्य से अतीत अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण सूक्ष्मराज्यरूप अनन्त पारावार के लिए दर्शनशास्त्र ही ध्रुवतारा स्वरूप है। सूक्ष्मराज्य में प्रवेश करने की इच्छा करनेवाला साधक केवल दर्शनशास्त्रों की सहायता से ही सूक्ष्म राज्य में प्रवेश करने में समर्थ होता है। जिस प्रकार स्थूलनेत्रविहीन व्यक्ति स्थूलजगत् का कुछ भी नहीं देख सकता; इसी प्रकार दर्शनशास्त्र को न जाननेवाला व्यक्ति भी सूक्ष्मजगत् के विषयों को कुछ भी नहीं समझ सकता, अतएव इन सभी तत्त्वों से यह ज्ञात होता है कि जो शास्त्र सूक्ष्म जगत् का वास्तविक तत्त्व समझा दे वही दर्शनशास्त्र है। इसी दर्शनशास्त्र में त्रिभावतत्त्व का एक विस्तृत विवेचन किया गया है जिसको संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने का मैंने प्रयास किया है। भाव शब्द **भू भावे घञ्**[1] प्रत्यय से मिलकर बना है जिसका विभिन्न शास्त्रों में अनेकानेक अर्थ बताये गये हैं। इस लेख में दार्शनिक विश्लेषण किया जा रहा है।

स्वरूप से तटस्थ ज्ञान में उतरने के लिए अथवा तटस्थ से स्वरूपज्ञान में पहुँचने के लिए भाव का आश्रय लेने के सिवाय और दूसरा उपाय नहीं है। मन, बुद्धि अथवा वाक्य से अतीत ब्रह्मपद का आश्रय करने के लिये भाव की सहायता लेने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। भावातीत ब्रह्मभाव जिन सत्–चित् एवं आनन्द सत्ताओं से पूर्ण है, ये तीनों सत्ताएँ भी भावमय ही हैं, जैसा कि छान्दग्योपनिषद् में सृष्टि के उत्पत्ति–वर्णन के प्रसङ्ग में कहा है कि – **'एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेय'**[2] अर्थात मैं एक से अनेक होऊँ, प्रजाओं की सृष्टि करूँ। परमात्मा का अद्वैत अवस्था से अनेक होना यह अवस्था भी भावमय है। सुतरां भाव के अवलम्बन के बिना सृष्टि से अतीत परब्रह्म पद जैसे हृदयङ्गम नहीं किया जाता वैसे ही भाव की सहायता के बिना यह विराट् सृष्टि अथवा इसका कोई भी अङ्ग उपलब्ध नहीं हो सकता। इसी से पूज्यपाद श्री शङ्कराचार्य जी ने कहा है – **'भावप्रधानमाख्यातम्'** सब भावप्रधान ही है। ब्रह्मसूत्र में भी **'भावे चोपलब्धेः'**[3] द्वारा उसकी सत्ता प्रकट की गई।

वेद और शास्त्र में सृष्टि से अतीत अद्वैतभावपूर्ण जो स्वरूप का वर्णन है, वेदान्तशास्त्र में स्वरूपज्ञान से प्राप्त कहकर जिस भाव का वर्णन किया गया है, तत्त्वज्ञानी महापुरुषगण ज्ञानपूर्ण भाव के ही द्वारा उस भाव को प्राप्त किया करते हैं। जिसमें ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेयरूप त्रिपुटि का अस्तित्व है, उसका नाम **तटस्थ** ज्ञान है और जिसमें इस त्रिपुटि का लय होकर केवल अद्वैतभाव का उदय होता है उसको ही **स्वरूपज्ञान** कहते हैं। भाव के द्वारा ये दोनों ही ज्ञान समझे जाते हैं। तटस्थ ज्ञान की अवस्था में जब पुरुष की विषयदृष्टि रहती है अर्थात् जब पुरुष निज ज्ञान की सहायता से किसी विषय का अनुभव करता रहता है, तब उसके अन्तःकरण में जैसे भाव की प्रधानता होती है, विषय–बोध भी वैसा ही हुआ करता है। इसी कारण विषयी व्यक्ति की धारणा होती है कि जगत् सत् एवं सुखमय है और विषयीविरक्त तत्त्वज्ञानी महापुरुष की धारणा होती है कि जगत् असत् एवं दुःखमय है, एक के लिए अन्य धारणा असम्भव है। सुतरां तटस्थ ज्ञान की अवस्था में भाव के अवलम्बन की प्रधानता रहती है। तदतिरिक्त आत्मवेत्ता महापुरुष जब त्रिपुटि ज्ञान के रहस्य से अन्तःकरण को निरुद्ध कर समाधि की सहायता से स्वरूप में प्रतिष्ठित होते हैं, उस अवस्था में, जीवन्मुक्त दशा में निर्विकल्प समाधिभाव का बोध ही वर्तमान रहता है। निर्विकल्प समाधि को प्राप्त जीवन्मुक्त महापुरुष जब शरीर त्याग करते हैं तब उनके अंश की प्रकृति मूलप्रकृति में लय हो जाती है एवं वे स्वरूप में लीन हो जाते हैं; किन्तु जितने दिनों तक जीवन्मुक्त महापुरुषों का शरीर रहता है उतने दिनों तक निर्विकल्प समाधिभाव का अवलम्बन रहना अवश्यम्भावी है। अतः अन्तिम आश्रय तो भाव ही है।

तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्ररूपविनिवृत्ताम्।
प्रकृतिः पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदस्थितः स्वस्थः।।[4]

सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कार्य बिना भाव के अनुभव में नहीं आ सकता। भाव तीन हैं, **अध्यात्मभाव**, **अधिदैव भाव** और **अधिभूतभाव**। भावपदार्थ सर्वव्यापक है। क्योंकि ब्रह्मस्वरूप में भी तीन भाव विद्यमान हैं तो ब्रह्म से उत्पन्न इस जगत् के प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्म अङ्ग में भी त्रिभाव का होना स्वतःसिद्ध है।

सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों के द्वारा ब्रह्माण्ड और पिण्डमय सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लयक्रिया सुसम्पन्न हुआ करती है और अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीन भाव द्वारा सृष्टि का ज्ञान होता है।

परब्रह्म परमात्मा जगदीश्वर को हम तीन भाव से जानते हैं। उनके अध्यात्मभावमयरूप को **ब्रह्म** कहते हैं, अधिदैवभावपूर्ण रूप को **ईश्वर** कहते हैं एवं अधिभूतभावपूर्ण रूप को **विराट्** कहते हैं। सृष्टि से अतीत, सर्वकारणस्वरूप, निर्लिप्त, वाणी और मन के अगोचर जो उनका रूप है उसी को वेद और शास्त्र में ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्मपद के साथ वस्तुतः सृष्टि का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह जगत् उसी में स्थित है; किन्तु वह जगत् में नहीं है। ब्रह्म के सगुणरूप का नाम ईश्वर है। जब मूलप्रकृति साम्यावस्था से वैषम्यावस्था को प्राप्त होती है, जब उनके 'ईक्षण' के आश्रय से प्रकृति परिणामिनी होकर सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती है, तब इस ब्रह्माण्ड के द्रष्टा, सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्तास्वरूप जो त्रिगुणमय भगवान् हैं उनको ही ईश्वर कहा जाता है।

चैतन्यं सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्वसर्वनियन्तृत्वादिगुणकं सदव्यक्तमन्तर्यामी जगत्कारणमीश्वर..[5]

जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया – **'यः सर्वज्ञः सर्ववित्।**[6] यही जगदीश्वर सृष्टि–स्थिति–लय कार्य के भेद से स्वतन्त्र–स्वतन्त्र अधिकार के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम से अभिहित होते हैं एवं यह अनादि अनन्तरूपधारी अगणित ब्रह्माण्डमय जो महान् स्वरूप है इसी को विराट्रूप भगवान कहा जाता है। योगीजन इन्हीं तीन भावों से भगवान् का दर्शन किया करते हैं। साधक, कभी योगयुक्त होकर वाणी, मन, अगोचर ब्रह्मरूप का चिन्तन करते–करते ज्ञान की चरम सीमा में उपस्थित होते हैं; कभी वे ही योगी ईश्वर के सगुणरूप को देखते–देखते आनन्द पुलकित होते हैं और कभी असीम चिन्तास्रोत को प्रवाहित कर उनके विराट् स्वरूप का अनुभव करते–करते मग्न हो जाते हैं। इस जगत् के कारण भगवान हैं एवं यह जगत् उनका कार्य है। इसी से ब्रह्म को कारणब्रह्म और जगत् को कार्यब्रह्म कहा जाता है। जो कारण में है वही, कार्य में रहेगा, सुतरां भगवान् के अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीन रूप हैं तब इस जगत् के भी एवं इसके प्रत्येक अंग के भी तीन रूप हैं।

वेद के तीन काण्ड अर्थात् कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड, इनका आविर्भाव क्रमशः भगवान् के अधिभूत, अधिदैव एवं अध्यात्मभाव के अनुसार हुआ है। भगवान् में तीन भाव हैं इसी से वेद के तीनों काण्ड त्रिभावात्मक हैं एवं वेद, पूज्यपाद महर्षियों की समाधिगम्य बुद्धि द्वारा प्राप्त हुए हैं तथा

वेद अपौरुषेय है, इसी कारण वेद का प्रत्येक मन्त्र त्रिभावात्मक है। विज्ञानभाष्य आदि ग्रन्थों में इसका विस्तृत प्रमाण पाया जाता है, यथा :–

यथा दुग्धञ्च भक्तञ्च शर्कराभिः सुमिश्रितम्।
कल्पितं देवभोगाय परमान्नं सुधोपमम्।।
तथा त्रैविध्यमापन्नः श्रुतिभेदः सुखात्मकः।
नयते ब्राह्मणं नित्यं ब्रह्मानन्दं परात्परम्।।[7]

इस प्रकार प्रत्येक श्रुति त्रिभावात्मक होने के कारण प्रत्येक श्रुति का अर्थ तीन भाव से तीन प्रकार का हुआ करता है एवं प्रत्येक श्रुति त्रिभावात्मक होने के कारण कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों काण्डों में व्यवहृत हो सकती है। इसी कारण वेद का माहात्म्य अनन्त है।

इस संसार में भाव ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, भाव की अपेक्षा सूक्ष्मतर कोई तत्त्व नहीं है। भावातीत ब्रह्म भी भाव की सहायता से ही तत्त्ववेत्ता योगियों के द्वारा पहले जाने जाते हैं। ब्रह्मसाक्षात्कार करने में अन्तिम अवलम्बन भाव ही है। वृत्तिसारूप्य में भाव के सत् और असत् इन दो भेदों से क्रमशः पुण्य और पाप का उदय हुआ करता है। भाव की सूक्ष्मता तीन प्रकार की होती है। यथा– आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। भक्तराज ज्ञानी महापुरुष इन तीनों भावों के अवलम्बन से ब्रह्म, ईश्वर और विराट्रूपों में भगवान् के दर्शन करते हैं। तत्त्वदर्शी ज्ञानी सब ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुओं में तीनों भावों को अच्छी तरह से देखा करते हैं। स्थूलावस्था में भाव सत् और असद्रूपों का आश्रय करके स्वर्ग और नरक को प्राप्त कराता है। इस प्रकार सभी तत्त्वों का अन्तिम तत्त्व तथा साधक को ब्रह्मपदवी दिलानेवाला भावतत्त्व ही है –

भाव एषाऽत्र सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्त्वं निगद्यते।
भावात्सूक्ष्मतरं किञ्चितत्त्वं न परिलक्ष्यते।।
भावातीतमपि ब्रह्म ज्ञायते योगिभिः सदा।
साहाय्येनैव भावस्य प्रथमं तत्त्ववेदिभिः।।
ब्रह्मसाक्षात्कृतौ भावमतिमालम्बनं विदुः।
सारूप्यावस्थितौ वृत्तेः सदसद्भावभेदतः।।
उत्पद्येते तु भावेन पुण्यपापे उभे अपि।
सूक्ष्मावस्था तु भावस्य त्रैविध्यमवलम्बते।।
आध्यात्मिकाधिदैवाधिभौतिकानीति शास्त्रतः।
ज्ञानिना भक्तराजेन तत्त्रयस्यावलम्बतः।।
ब्रह्मेश्वरविराड् रूपैर्भगवान् दृश्यते क्रमात्।
ब्रह्माण्डेषु च सर्वत्र ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।
भावान्स्त्रीन्सततं सम्यक् वीक्षन्ते सर्ववस्तुषु।
भावो हि स्थूलावस्थायां सदसद्रूपमास्थितः।।
स्वर्गं च नरकं चैव प्रापयत्यत्र मानवान्।[8]

भाव के साथ आसक्ति और आसक्ति के साथ भाव का भी रहना स्वतः सिद्ध है। क्योंकि आसक्ति के बिना कर्म नहीं हो सकता और बिना भाव के विषय अनुभव में नहीं आ सकता। आसक्ति की जहाँ प्रधानता होती है वहाँ असद्भाव गौणरूप में रहता है परन्तु जहाँ शुद्धभाव की प्रधानता होती है वहाँ आसक्ति भी बहुत क्षीणता धारण करके अत्यन्त छिपी हुई रहती है। त्रिभाव इतना व्यापक है कि उसको विभु कहने में भी अत्युक्ति नहीं होगी। सत् भी भाव है, चित् भी भाव है और आनन्द भी भाव है। जो कुछ ज्ञेय है सो सब भाव है। जो कुछ अस्ति है सो भाव है। जो नहीं है अर्थात् नास्ति शब्द भावरहित अभावजनित है।[9] तात्पर्य यह है कि जो कुछ पदार्थ है अर्थात् सृष्टि में जिस पदार्थ का अस्तित्व उन सब पदार्थों के साथ भाव का सम्बन्ध है। वे सब पदार्थ त्रिभावों में से किसी भाव के अन्तर्गत होंगे और सृष्टि में जो पदार्थ नहीं है, जिस पदार्थ का अस्तित्त्व नहीं हो सकता वही भाव से विरुद्ध अभाव से सम्बन्धयुक्त है। इस विचार द्वारा भाव का सर्वोपरि महत्त्व प्रतिपन्न होता है। कार्यब्रह्मरूपी इस जगत् के सर्वत्र अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत भाव किस किस प्रकार से प्रकट होते हैं, सो कुछ दृष्टान्त द्वारा बताया जाता है। महाभारत के अश्वमेध पर्वान्तर्गत अनुगीतापर्व में तथा शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षाधर्मपर्व में त्रिविध भावों के विषय में अनेक वर्णन मिलते हैं, पञ्चमहाभूतों में से आकाश प्रथम भूत है; श्रोत्र उसका अध्यात्म, शब्द अधिभूत और दिग्देवता अधिदैव है। वायु द्वितीय भूत है; त्वक् उसका अध्यात्म; स्पृश्य विषय अधिभूत और विद्युत्देवता अधिदैव है। अग्नि तृतीय भूत है, चक्षु उसका अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्यदेवता अधिदैव है। चतुर्थभूत जल है; जिह्वा उसका अध्यात्म, रस अधिभूत और सोमदेवता

अधिदैव है। पृथिवी पञ्चम भूत है; प्राण उसका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत और वायुदेवता अधिदैव है। पञ्चकर्मेन्द्रियों में से पादेन्द्रिय अध्यात्म है, गन्तव्य अधिभूत है और विष्णु अधिदैव है। उपस्थ अध्यात्म है, आनन्द अधिभूत है और प्रजापति अधिदैव है। पाणि अध्यात्म है, कर्तव्य अधिभूत है और इन्द्र अधिदैव है। वाक् अध्यात्म है, वक्तव्य अधिभूत है और वह्नि अधिदैव है। पञ्च–ज्ञानेन्द्रियों में से चक्षु अध्यात्म है, रूप अधिभूत है और सूर्य अधिदैव है। श्रोत्र अध्यात्म है, शब्द अधिभूत है और दिग्देवता अधिदैव है। जिह्वा अध्यात्म है, रस अधिभूत है और आपोदेवता अधिदैव है। घ्राण अध्यात्म है, गन्ध अधिभूत है और पृथिवी देवता अधिदैव है। त्वक् अध्यात्म है, स्पर्श अधिभूत है और पवनदेवता अधिदैव है। मन अध्यात्म है, मन्तव्य अधिभूत और चन्द्रदेवता अधिदैव है। अहङ्कार अध्यात्म है, अभिमान अधिभूत है और बुद्धिदेवता अधिदैव है। बुद्धि अध्यात्म है, बोद्धव्य विषय अधिभूत और क्षेत्रज्ञ आत्मा अधिदैव है। इस प्रकार से कर्म–ब्रह्मरूपी विराट् शरीर के सर्वत्र तीन भाव धीर ज्ञानी पुरुष संयम के द्वारा देख सकते हैं। भावतत्त्व के सम्यक् परिज्ञान से ही साधक भावातीत परमपद को प्राप्त करके अनायास संसारसिन्धु से अतिक्रम कर सकता है। इस विषय में मुक्ति के साथ भावतत्त्व का अलौकिक सम्बन्ध श्रीविष्णुगीता में जो कहा गया है, वह इस प्रकार है –

तत्त्वज्ञानस्य यन्मूलं सङ्क्षेपाच्छृणुतामराः।
अवश्यमेव विज्ञेयमित्येतावत्सुर्षभाः।।
प्रपञ्चमयदृश्येऽस्मिन् नास्ति किञ्चित्त्रिभावतः।
रहितं वस्तु भावो हि कारणं गुणदर्शने।।
प्रकृतिस्त्रिगुणा या मे प्रथमं त्रीन् गुणान्स्वके।
स्वस्मिन् सम्यक् विलय्यैव तदा सा मयि लीयते।।
आदौ देवाः! त्रयो भावाः स्थिताः स्वस्वस्वरूपतः।
पश्चादद्वैतरूपत्वमाश्रयन्तीति सम्मतम्।।
गुणदर्शनहेतुर्हि तस्माद्भावः प्रकीर्त्तित।
साधुकानां सुरा;!भावो ह्यवलम्बनमन्तितम्।।

अर्थात् प्रभु ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा– हे देवगण! मैं संक्षेप से तत्त्वज्ञान का मूल बतला दूँ, सुनो ! इतना अवश्य आपलोगों को जानना चाहिए कि इस प्रपञ्चमय दृश्य में कोई पदार्थ भी त्रिभाव से रहित नहीं है; क्योंकि भाव ही गुणदर्शन का कारण है। त्रिगुणमयी मेरी प्रकृति पहले तीन अपने गुणों को अपने आप में लय करके पीछे से स्वयं ही मुझमें लय हो जाती है। उस समय तीनों भाव प्रथम सत्, चित् और आनन्दरूप से अलग रहकर पीछे एक अद्वैतरूप को प्राप्त करते हैं, यह निश्चय है, इस कारण से भाव अन्तिम तत्त्व होकर गुणदर्शन का हेतु कहा गया है। हे देवगण! मुमुक्षु साधक का अन्तिम अवलम्बन भाव ही है। सुतरां मुक्तिमार्ग में पहुँचने पर सबसे अन्तिम और बड़ा अवलम्बन भाव ही है, इसमें सन्देह नहीं। यही त्रिभावतत्त्व का आर्यशास्त्र वर्णित गूढ़ रहस्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) अमरकोश
(2) छान्दोग्योपनिषद् – पृष्ठ अध्याय, द्वितीय खण्ड, तीसरा मन्त्र, छा0उ0 6/2/3
(3) ब्रह्मसूत्र 2/1/15
(4) सांख्यकारिका /65 का.
(5) वेदान्तसार
(6) मुण्डक. 1/1/9
(7) विज्ञानामृतभाष्य
(8) संन्यासगीता
(9) नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः (भगवद्गीता 2/16)